ISBN : 978-93-82597-94-0

समकालीन कविता : भारतीय संस्कृति के विविध आयाम

दो दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी / 2-3 नवम्बर, 2017

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हरीश अरोड़ा
संयोजक एवं सम्पादक

चन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचार्य

सौजन्य : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान

Scanned by CamScanner

भक्तिकालीन कविता
भारतीय संस्कृति के विविध आयाम
भाग-3

दो दिवसीय अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी
2-3 नवम्बर, 2017

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

संरक्षक
डॉ. रवीन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचार्य

सम्पादक
डॉ. हरीश अरोड़ा
संयोजक, अन्तरराष्ट्रीय संगोष्ठी

साहित्य संचय
ISO 9001:2015
मोबाइल : 9871418244, 9136175560
ISBN No. 978-93-82597-94-0

Scanned by CamScanner

संयोजन समिति

संरक्षक

श्री रवीन्द्र कुमार
अध्यक्ष, प्रबन्धकर्तृ समिति

डॉ. रवीन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचार्य

डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा
कोषाध्यक्ष

सम्पादक एवं संयोजक

डॉ. हरीश अरोड़ा

संचालन समिति

डॉ. बासुकि नाथ चौधरी
डॉ. संजय कुमार
डॉ. सत्यकाम शर्मा
डॉ. रेणुका धर बजाज
डॉ. अमित कुमार
डॉ. आशमा भाटिया
डॉ. प्रमोद कुमार सेठी

स्वागत समिति

डॉ. रुक्मिणी
डॉ. मीना शर्मा
डॉ. ज्योत्स्ना प्रभाकर
डॉ. सोनिका नागपाल
डॉ. श्रुति रंजना मिश्रा
डॉ. करिश्मा सारस्वत
डॉ. मीनाक्षी
डॉ. मंजरी गुप्ता

पंजीकरण समिति

श्री बलवन्त सिंह
डॉ. बीना मीना
डॉ. कुमार धनंजय

साज सज्जा समिति

डॉ. डिम्पल गुप्ता
डॉ. सोनिका नागपाल
डॉ. श्रुति रंजना मिश्रा
डॉ. मंजरी गुप्ता

जलपान समिति

डॉ. विपिन प्रताप सिंह
डॉ. जयशंकर शर्मा
डॉ. पुनीत चाँदला
डॉ. श्रुति विप
डॉ. सोनिका नागपाल
डॉ. अमित कुमार भगत
डॉ. योगेश शर्मा
श्री मनोज कुमार

Scanned by CamScanner

21. भक्ति आन्दोलन और कबीर 92
नेहा तिवारी
22. भक्ति काव्य और प्रगतिशील हिन्दी आलोचना 95
नीलेश कुमार
23. भारतीय संस्कृति की विराटता और मध्यकालीन भारत 100
रामचंद्र लक्ष्मण भतु
24. लोकमंगल की भावना और तुलसीकृत 'रामचरितमानस' 104
गजेन्द्र प्रताप सिंह
25. भक्ति आन्दोलन और कबीर 106
वीरेन्द्र सिंह
26. जायसी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति 110
विवेक कुमार
27. कबीर के काव्य में स्त्री 113
नाज़िया फातमा
28. संतों की वाणी में व्याप्त राष्ट्रीय एकता 116
नीलम सिंह
29. लोकमानस की महागाथा : श्री रामचरितमानस 118
आशीष खरे
30. तुलसीदास के काव्य में दार्शनिक अवबोध 121
निर्मला कुमारी
31. भक्ति आन्दोलन और कबीर 124
स्नेहलता सिंह
32. लोकमानस की महागाथा : रामचरितमानस 128
सुषमा
33. जायसी की रचनाधर्मिता और भारतीय संस्कृति 132
राजकुमार त्रिपाठी
34. भक्ति आन्दोलन और कबीर 136
कुमारी रीना
35. भक्ति काव्य : मूल्य और प्रासंगिकता 139
वंदना पाण्डेय
36. भक्तिकालीन कविता में भारतीय धर्म का स्वरूप 141
महेश चंद
37. दलित चेतना के संदर्भ में कबीर काव्य की प्रासंगिकता 144
ए.डी. चावड़ा
38. भक्ति आन्दोलन और कबीर 148
बाबासाहेब माने
39. श्रीरामचरितमानस : लोकमंगल का महाकाव्य 151
बिपिन कुमार झा
40. भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ की अवधारणा 154
डी.एस. मरावी
41. तुलसीदास और रामराज्य 157
कमलेश / शिल्पा जैन
42. लोकधर्म की प्रतिष्ठा और भक्तिकालीन हिंदी कविता 160
लक्ष्मण जे. वाणवी
43. भक्तिकाल में समन्वयात्मकता की भूमिका 163
शबाना हबीब

Scanned by CamScanner

भक्ति आंदोलन और कबीर

डॉ. बाबासाहेब माने
श्री शिव छत्रपति महाविद्यालय
पुणे, महाराष्ट्र

मध्ययुगीन भारत में भक्ति का वह आंदोलन प्रखर रुप में प्रज्वलित हुआ, जिसने तत्कालीन समय में निराश, लाचार, पीडित, विवश और भयग्रस्त जनता को जीवन जीने की नई उमंग एवं नव चेतना प्रदान की। उसने अपने विविध आलंबनों से युक्त भक्ति पद्धतियों की प्रेरणाओं के द्वारा जन सामान्य को अपने अस्तित्व के लिए आधार भूमि प्रदान की। इस भक्ति पद्धति की शुरुआत वेदों से मानी जाती है। इस पर विद्वानों में मत-भिन्ता है, परंतु अधिकांश विद्वान वेदों से ही भक्ति का प्रारंभ मानते हैं। अतः वेदकाल से लेकर मध्यकाल तक भक्ति की चेतना कभी प्रखर तो कभी धीमी पड़ी दिखाई देती है। परंतु मध्यकाल की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण भक्ति की यह परंपरा तीव्रता से दक्षिण से उत्तर की ओर पहुँची और उसने संपूर्ण भारत वर्ष को अपने चेतनामयी आगोश में ले लिया और ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, सामंत-सिपाही आदि सभी में नव आशा एवं जिजीविषा पैदा की। वैसे तो मध्यकाल की समय सीमा पर विद्वानों में मत भिन्नता नजर आती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने मध्यकाल की समय सीमा 1318 ई से 1643 ई. तक मानी है। जबकि आचार्य परशुराम चतुर्वेदी मध्यकाल की समय सीमा को चौदहवीं शती के मध्य से लेकर सत्रहवीं शती के मध्यतक स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. ईश्वरदत्त शील ने मध्यकाल की समय सीमा को व्यापक करते हुए उसे 1300 से 1850 ई. तक बढ़ाया है। इसमें उन्होंने रीतिकाल को भी समाहित किया है। अतः मध्यकाल की समय सीमा के संदर्भ में चाहे विद्वानों में कितनी ही मत-भिन्नता क्यों न हो ?, परंतु मध्यकालीन शताब्दियों में मुस्लिम वंशों, बादशाहों और सुल्तानों की वजह से भारतीय जनमानस को अनेक दुख और अनेक कष्ट झेलने पडे हैं। इस वास्तविकता को कोई नकार नहीं सकता। मध्यकालीन भारतीय जनता को अनेक दुखों को झेलना पड़ा था, इसके कई कारण हैं। इन कारणों में प्रमुख हैं- तत्कालीन जनता का अशिक्षित होना, उसका अंधश्रद्धा, जातिभेद, ऊँच-नीच का भेद, बालविवाह, बहुविवाह, सती प्रथा या जौहर प्रथा, पर्दाप्रथा, पाखंड और बाह्याडंबरों से ग्रसित होना, पंडितों और मौलवियों के द्वारा जनता को सताया जाना और जन सामान्य का मुस्लिम आक्रांताओं के अन्यायों एवं अत्याचारों से पीडित एवं विवश रहना आदि। मध्ययुगीन काल में भारत में गुलाम वंश (1206-1290 ई.), खिलजी वंश (1290-1320 ई.), तुगलक वंश (1320 -1412 ई.), सैयद वंश (1412-1451 ई.), लोदी वंश (1451-1526 ई.), मुगलवंश (1536 ई. के आगे) जिसमें मुहम्मद बाबर, हुमायू, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि का शासनकाल रहा है। इन वंशों के बादशाहों तथा सुलतानों ने यहाँ की जनता पर खासकर हिंदू जनता पर अनेक तरह के अत्याचार किए। इनमें से कई बादशाह तथा सुल्तान सहिष्णु भी थे। परंतु जिसकी लाटी, उसकी भैंस' कहावत के अुनसार सभी के शासनकाल में भारतीय जनता खासकर हिंदू जनता को कमाधिक मात्रा में अवश्य दुःख झेलना पडा है। ऐसे समय में हिंदू जनता विवश एवं आधारहीन हो गई थी। उसमें तरह-तरह के बुरे कर्म हुआ करते थे। जातिभेद, धर्मभेद, अशिक्षा, अंधश्रद्धा, पाखंड आदि कई प्रकार के दुर्गुणों में वह बुरी तरह से जकड़ी हुई थी। साथ ही बादशाहों, सुलतानों, सामंतों के द्वारा लूटपाट करना, मंदिरों को तोडना, जबरन धर्म परिवर्तन कराना, स्त्रियों का अपहरण करके उन्हें भोगना या दासी बनाकर रखना, नहीं तो फिर बेच देना आदि कई प्रकार के जुल्मों की वजह से भी जनता परेशान थी। ऐसा भी नहीं था कि केवल मुस्लिम शासकों के द्वारा ही इस प्रकार के जुल्म हो रहे थे, बल्कि कई हिंदू शासक भी इस तरह के अनेक जुल्म जनसामान्य पर कर रहे थे। जनता के पास न्याय मांगने के लिए कोई विकल्प नहीं बचा था। ऐसे में जनता विवश, लाचार, पीडित एवं आधारहीन महसूस करने लगी थी। इसी समय शंकराचार्य की वैष्णव भक्ति परंपरा की जलधारा रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, विष्णुस्वामी, निबांकाचार्य, रामानंद, वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवाहित होती हुई नामदेव, कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास तथा जायसी जैसे संत कवियों के द्वारा अपने उफान पर पहुँची और उसने तत्कालीन समाज को जीने की नई आशा एवं आधार प्रदान किया। उसमें प्रेम भाव, मानवता, सेवाभाव, बाह्याडंबर रहित जीवन और भेद रहित ईश्वर भक्ति आदि मूल्यों को जागृत किया। समाज में इन मूल्यों को जागृत करने हेतु उक्त संत कवियों में से किसी ने निर्गुण तो किसी ने सगुण ईश्वर का सहारा लिया तो, किसी ने ज्ञान मार्ग तो किसी ने प्रेम के मार्ग के द्वारा लोगों में भक्ति का उचित संचार किया। किसी ने कृष्ण को आलंबन बनाया तो किसी ने दशरथ सुत राम को आलंबन बनाकर जन सामान्य के जीवन में स्थिरता लाने का प्रयास किया। भक्ति के इसी आंदोलन ने मध्यकालीन जनमानस को नई आशा, नई उमंग, प्रखर आस्था तथा नवीन चेतना से अप्लावित किया। साथ ही कबीर जैसे निर्गुणवादी संतों और जायसी जैसे

Scanned by CamScanner

सूफी संतों ने हिंदू और मुसलमानों के बीच एकता स्थापित करने हेतु प्रेम मार्ग की भक्ति का आवलंब किया और दोनों धर्मों की आधारहीन एवं दुविधा में पड़ी जनता को प्रेम एवं सहिष्णुता पूर्वक जीवन जीने का आधार प्रदान किया।

मूलतः भक्ति आंदोलन की शुरुआत दक्षिण में हुई। यह आंदोलन तमिलनाडू से कर्नाटक, कर्नाटक से महाराष्ट्र और महाराष्ट्र से गुजरात होता हुआ उत्तर भारत में पहुँचा और उसने संपूर्ण भारत को अपने आगोश में ले लिया। भक्ति आंदोलन के उद्भव एवं विकास के संदर्भ में डॉ. ईश्वर दत्त शील ने अपनी किताब 'हिंदी साहित्य का मध्यकाल' में 'पद्मपुराण' के 'भागवत महात्म्य' का हवाला देते हुए लिखा है कि –

"उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्नाटके गता।
क्व चित् क्व चिन्महाराष्ट्रे गुजरे जीर्णता गता।।
तत्र घोर कलेर्योगात् पाखंडैः खण्डितांगका।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्याम् सद मन्दताम्।।
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरुपिणी।
जाताहं युवती सम्यक प्रष्ठ रुप तु साम्प्रतम।।"[1]

अर्थात् मैं (भक्ति) द्रविड देश में उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी, महाराष्ट्र में कहीं-कहीं पल्लवित हुई, किंतु गुजरात में जीर्ण हो गई। वहां कठोर कलिकाल में खण्डितांग हो गई, तदनंतर दुर्बल होकर पुत्रों सहित मैं धीरे-धीरे वृंदावन आ गई और यहाँ आकर मैं सुंदर स्वरूप को प्राप्त कर उत्कृष्ट रुप संपन्ना युवती बन गई। इसी से संबंधित भक्ति आंदोलन के प्रवाह के संदर्भ में एक दूसरा मत यह भी प्रसिद्ध है कि 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानंद' अर्थात् द्राविड में उत्पन्न भक्ति को रामानंद ने उत्तर में लाने का सराहनीय कार्य किया। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, सामंत-सिपाही आदि सभी को भक्ति करने के मार्ग खोल दिए। इसी रामनंद की शिष्य परंपरा में कबीरदास, अनंतदास, सेन, पीपा, धन्ना आदि आते हैं। इन्होंने अपने गुरु के दिए मार्ग को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इनमें कबीरदास का योगदान सबसे उच्चतर साबित होता है।

कबीरदास ने निर्गुण भक्ति का प्रचार-प्रसार करके, उसके माध्यम से समाज में फैली हुई कुरीतियों को नष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने जातिगत बंधनों में अटकी भक्ति को सभी के लिए खुला करने में भी अहम रोल निभाया। इसकाल की भक्तिपरक काव्यधारा को विद्वानों ने प्रमुखतः से दो भागों में विभाजित किया है। एक निर्गुण भक्ति धारा और दूसरी सगुण भक्ति धारा। निर्गुण भक्ति धारा को पुनः ज्ञानश्रयी या संत काव्यधारा और प्रेमश्रयी या सूफी काव्य धारा आदि भागों में विभाजित किया है तो, सगुण भक्ति धारा को कृष्ण भक्ति धारा और राम भक्ति धारा आदि दो भागों में विभाजित किया है। निर्गुण भक्ति धारा में ज्ञानश्रयी या संत काव्यधारा में कबीरदास का स्थान अग्रिम पंक्ति में आता है। इनके साथ ही रैदास, नानक, सींगा, दादूदयाल, मलूकदास, सुंदरदास आदि संत कावियों ने निर्गुण भक्ति धारा की ज्ञानश्रयी शाखा या संत काव्यधारा को आगे बढ़ाने में योग दिया है। परंतु भक्ति आंदोलन में एक ओर जहाँ तुलसीदास अपनी सगुण भक्ति धारा को लेकर खड़े थे, वहीं दूसरी ओर निर्गुण, निराकार ब्रह्म को लेकर कबीरदास खड़े थे। सगुण भक्ति धारा के संतों ने जहाँ अपने ब्रह्म को साकार स्वरूप मानकर उसकी आराधना की तो कबीरदास जैसे निर्गुणवादी संतों ने ब्रह्म, परामात्मा आदि संबोधनों के द्वारा घट-घट में समाए हुए निर्गुण निराकार परमात्मा की उपासना की और तत्कालीन लोगों में निहित जातिगत बंधनों, बाह्याडंबरों, अंधश्रद्धाओं, ऊँच-नीच का भेद, अमीर-गरीब का भेद, धार्मिक पाखंड आदि पर अपनी तीखी वाणी से प्रहार कर लोगों में जागृति फैलाने प्रयास किया।

कबीर के संदर्भ में यह बात सर्वविदित है कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। उनके 'मसि कागज छुयौ नहीं, कलम गह्यौ नहीं हाथ।'[2] और "मैं कहता आंखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।"[3] इन कथनों से यह स्पष्ट है कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। परंतु उन्होंने जो दुनिया देखी थी। जिस समाज के विविध रुपों एवं धारणाओं को देखा एवं समझा था। जिन-जिन स्थानों की यात्राएँ की थी। उन सारी अनुभूतियों ने उन्हें काव्यमयी प्रबोधन करने की शक्ति प्रदान की थी। इसीलिए तो उन्होंने बोलचाल युक्त खिचड़ी भाषा के माध्यम से अपने भावों, मतों एवं विचारों को समाज में रोपित करने में कामयाबी हासिल की। उन्होंने अपनी भक्ति पद्धति में निर्गुण, निराकार, अगोचर ब्रह्म को अपना आलंबन बना दिया और सामान्य जनता को भक्ति के साथ ही नीतिपरक एवं आडंबर रहित जीवन जीने की सीख प्रदान की। उनका यह आलंबन उपनिषद, शंकराचार्य की अद्वैतवादी वैष्णवभक्ति, नाथ पंथियों की भक्ति परंपरा, आलवारों की भक्ति साधाना और रामनंद की निर्गुणवादी भक्ति साधना से निसृत होकर आया था। उसी निर्गुण ब्रह्म के संदर्भ में कबीर के विचार हैं –

"अलख निरंजन लखैन कोई, निरभै निराकार है सोई।
सुनि असथूल रुप नहिं रेखां, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यो नहिं पेखा।।"[4]

यानी कबीर का ब्रह्म निराकार है, वह निर्भय है और उसका न कोई रुप है, न आकार है। वह तो दृष्टि या अदृष्टि में छिपा नहीं है। वह सर्वत्र विद्यमान है। वह घट-घट में समाया हुआ है। अतः कबीर ने इस अगोचर एवं सर्वत्र विद्यमान आलंबन के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम, शीख-इसाई, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, सामंत-सिपाही आदि सभी वर्णों एवं वर्गों के लिए भक्ति करने के मार्ग खोल दिए। एक भक्त को इस अगोचर ईश्वर तक पहुँचने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। चूंकि गुरु ही परम तत्व तक पहुँचने में भक्त की मद्द करता है। वही भक्त के जीवन का सच्चा मार्गदर्शक होता है। वही उसके जीवन को ज्ञान युक्त प्रकाश

Scanned by CamScanner

से आलोकित करता है। अत: उस गुरु की महिमा का गुणगान अवश्य होना चाहिए। इसलिए कबीर ने उनके स्वयं के जीवन को आलोकित करने वाले गुरु का गुणगान करते हुए कहा है कि -

"गुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।"
"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु अपने जिन गोविंद दियो बताय।।"

इन दो कथनों के द्वारा कबीर ने अपने जीवन में गुरु को कितना उच्चतर महत्व दिया था? इसका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। कबीर जहाँ पर गुरु को अत्यंत उच्च कोटि का महत्व देते हैं, वहीं वे तत्कालीन पाखंडी पंडितों, मौलवियों की भी अच्छी-खासी खबर लेते हैं। चूंकि तत्कालीन समय में अनेक पंडित एवं मौलवी अपने ओच्छे ज्ञान के पाखंड से सामान्य जनता का शोषण कर रहे थे। वे अलग-अलग वेश धारण कर तथा अलग-अलग चमत्कार दिखाकर जनता को धोखा दे रहे थे। ऐसे पंडितों को अपनी खरी-खरी सुनाते हुए कबीर ने कहा है कि- "पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय। एकै आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।" [1] इसके माध्यम से कबीर ने जन सामान्य में प्रेम का अलख जगाया और जो पंडित अपनी डींगें मारते थे, उन्हें फटकार लगाते हुए प्रेम से जनता के साथ व्यवहार करने की सीख दी थी। कबीर ने सूफी संतों की प्रेम भावना को अपनाकर हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने हेतु अपने प्रबोधन के माध्यम से सफल प्रयास किया था। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने हिंदू-मुस्लिम जनता के लिए एकेश्वरवाद की स्थापना करते हुए कहा था कि परमात्मा सर्वत्र स्थित है। उसे ढूंढने के लिए मंदिर और मसजिद में जाने की कोई जरुरत नहीं है और ना ही उसे योग के द्वारा या वैराग के द्वारा तलाशने की आवश्यकता नहीं है। वह तो घट-घट में समाया हुआ है। वह हर मनुष्य, हर प्राणी और संपूर्ण चराचर में वास करता है। अत: उसे सच्चे हृदय से चाहने की आवश्यकता है। वह हर हृदय में बसता है। उसे अपने आप में भी देख सकते हैं। इस बाबत उनका कथन है कि -"मोकौ कहाँ ढूंढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में। ना मैं देवल न मैं मसजिद, न काबे कैलास में। ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग वैराग में। खोजो होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तलाश में। कहै कबीर सुनौ भाई साधो सब स्वासों की स्वांस में।" * इसी तरह से कबीर ने अपने काव्यात्मक प्रबोधन से तत्कालीन जनता को जीवन और ईश्वर की सच्चाई बताई और आगे आनेवाली अनंत पीढियों के जीवन को आलोकित किया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भक्ति आंदोलन में कबीर का योगदान सराहनीय रहा है। जहाँ तुलसीदास ने सगुण मार्ग अपनाकर दशरथ सुत राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रुप को जनता के समाने रखा। जहाँ सूरदास ने कृष्ण की लीलाओं का सगुण रुप रखा। जहाँ सुफियों ने इश्क हकीकी की तर्ज पर प्रेम का मार्ग अपनाकर एकेश्वर के रुप को जनता के समाने रखा। वहीं कबीर ने ज्ञान के मार्ग को अपनाकर ब्रह्म के निर्गुण, निराकार, अगोचर रुप को जनता के सामने रखकर जनता का उद्धबोधन किया है। तत्कालीन समाज में फैले पाखंडों, बाह्यांडंबरों, अंधश्रद्धाओं पर खुलकर प्रहार करके हिंदू और मुसलमानों के बीच एकता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इसलिए उनका योगदान भक्ति आंदोलन में सराहनीय है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का मध्यकाल - डॉ. ईश्वर दत्त शील - पृ. 32-33 प्रथम संस्करण : 2007 , गरिमा प्रकाशन, कानपुर।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास - संपा. डॉ. नगेंद्र , डॉ. हरदयाल, पृ. 120
   संस्करण: 2015 , मयुर पेपरबैक्स, ए-95, सेक्टर-5, नोएडा-201301
3. वही, पृ. 120
4. हिंदी साहित्य का मध्यकाल - डॉ. ईश्वर दत्त शील, पृ.20
5. कबीर और जायसी - डॉ. पुरुषोत्तम वाजपेयी , पृ. 33
   संस्करण: 2014, चंद्रलोक प्रकाशन, वसंत विहार, कानपुर- 208021
6. हिंदी साहित्य का इतिहास - संपा. डॉ. नगेंद्र , डॉ. हरदयाल, पृ. 115
7. वही, पृ. 39
8. वही, पृ. 50

Scanned by CamScanner